VAID ICS LAW

VAID ICS LAW

(मासिक विधिक समसामयिकी)

दिसंबर, 2024

UPPCS-J/APO/OTHER JUDICIAL EXAMS

VAID ICS LAW

अरुणाचल प्रदेश धर्म स्वतंत्रता अधिनियम, 1978

समाचार में क्यों? अरुणाचल प्रदेश सरकार सांस्कृतिक संरक्षण और धार्मिक रूपांतरण पर बढ़ती चिंताओं को दूर करने के लिए 1978 के धर्मांतरण विरोधी कानून को पुनर्जीवित कर रही है।

अरुणाचल प्रदेश धर्म स्वतंत्रता अधिनियम, 1978, राज्य में धार्मिक रूपांतरणों को नियंत्रित करने और स्वदेशी विश्वासों एवं परंपराओं की रक्षा करने के उद्देश्य से पारित किया गया था। यह अधिनियम विशेष **रूप से बल, प्रलोभन या धोखाधड़ी** के माध्यम से धर्मांतरण पर रोक लगाता है, ताकि **धार्मिक स्वतंत्रता का दुरुपयोग न हो और सांस्कृतिक क्षरण** से बचा जा सके। इस अधिनियम के प्रमुख प्रावधान और संबंधित पहलू निम्नलिखित हैं:

अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं

अवैध धर्मांतरण पर रोक:

- बल, प्रलोभन (सामग्री लाभ की पेशकश) या धोखाधड़ी के माध्यम से किए गए धर्मांतरण पर प्रतिबंध।

दंड:

- उल्लंघनकर्ताओं को **दो साल तक की कैद** या **₹10,000 का जुर्माना**, या दोनों का सामना करना पड़ सकता है।

अनिवार्य रिपोर्टिंग:

- धर्मांतरण में शामिल व्यक्तियों को इसकी जानकारी संबंधित जिले के **उपायुक्त** को देनी होगी।

चार दशकों तक निष्क्रिय:

- 1978 में पारित होने के बावजूद, यह अधिनियम **46 वर्षों** तक निष्क्रिय रहा क्योंकि आवश्यक नियम बनाए नहीं गए।

अधिनियम को लागू करने की आवश्यकता क्यों पड़ी?

यह अधिनियम अरुणाचल प्रदेश की स्वदेशी जनजातियों जैसे **मोनपा, शेरडुकपेन, और तानी जनजातियों** के सांस्कृतिक विश्वासों और परंपराओं पर धर्मांतरण के प्रभाव को लेकर चिंताओं के समाधान हेतु लागू किया गया था।

सांस्कृतिक संरक्षण:

- अधिनियम का उद्देश्य राज्य की जनजातीय समुदायों की अनूठी परंपराओं को संरक्षित करना था।

बढ़ते धर्मांतरण:

राज्य में ईसाई धर्म की तीव्र वृद्धि—**1971 में 0.79% से बढ़कर 1981 में 4.32%** होने पर, धर्मांतरण और उसकी प्रभावशीलता पर बहस तेज हो गई।

अधिनियम निष्क्रिय क्यों रहा?

ईसाई संगठनों का विरोध:

- **अरुणाचल क्रिश्चियन फोरम** जैसे संगठनों ने इस अधिनियम का विरोध किया और इसे भेदभावपूर्ण और दुरुपयोग के लिए प्रवृत्त बताया।

राजनीतिक अनिच्छा:

- 2011 की जनगणना के अनुसार ईसाई धर्म राज्य का सबसे बड़ा धर्म (30.26%) बन गया, जिससे इस वर्ग को नाराज़ करने से बचने के लिए राजनीतिक नेतृत्व ने इसे टाल दिया।

नियमों की अनुपस्थिति:

- अधिनियम को लागू करने के लिए आवश्यक नियमों की अनुपलब्धता ने इसके क्रियान्वयन में बाधा उत्पन्न की।

अभी इसे पुनर्जीवित क्यों किया जा रहा है?

न्यायिक हस्तक्षेप:

- 2022 में, गुवाहाटी उच्च न्यायालय में दायर एक **जनहित याचिका (PIL)** ने सरकार की निष्क्रियता को उजागर किया। न्यायालय ने छह महीने के भीतर नियमों को अंतिम रूप देने का निर्देश दिया।

स्वदेशी परंपराओं का समर्थन:

- **इंडिजिनस फेथ्स एंड कल्चरल सोसाइटी ऑफ अरुणाचल प्रदेश (IFCSAP)** जैसे समूह इस अधिनियम के कार्यान्वयन के लिए बढ़ते धर्मांतरण को रोकने और स्थानीय परंपराओं को बचाने हेतु सक्रिय हैं।

चुनौतियाँ और चिंताएँ:

धार्मिक स्वतंत्रता बनाम सांस्कृतिक संरक्षण:

- आलोचकों का मानना है कि यह अधिनियम धार्मिक स्वतंत्रता को बाधित कर सकता है और **भेदभाव व विभाजन** को बढ़ावा दे सकता है।

स्वदेशी विश्वासों का समर्थन:

- समर्थकों का तर्क है कि यह अधिनियम अरुणाचल प्रदेश की सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने के लिए आवश्यक है।

आरएसएस और संबद्ध संगठनों की भूमिका:

- स्वदेशी विश्वासों को बढ़ावा देने वाले संगठनों की भूमिका, जो सीधे धर्मांतरण में शामिल नहीं होते, इस बहस को और जटिल बनाती है।

निष्कर्ष:

अरुणाचल प्रदेश धर्म स्वतंत्रता अधिनियम, 1978, सांस्कृतिक विरासत की सुरक्षा और धार्मिक स्वतंत्रता के संरक्षण के बीच नाजुक संतुलन को उजागर करता है। इसके कार्यान्वयन के दौरान विभिन्न दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुए, संवैधानिक अधिकारों का सम्मान सुनिश्चित करना अत्यावश्यक होगा।

संपत्ति के अधिकार को मानव और संवैधानिक अधिकार बताया: सुप्रीम कोर्ट

समाचार में क्यों? सुप्रीम कोर्ट ने यह फैसला दिया कि किसी भी व्यक्ति को उनकी संपत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता है, जब तक कि उन्हें उचित मुआवजा न दिया जाए, क्योंकि संपत्ति का अधिकार न केवल एक संवैधानिक अधिकार है, बल्कि एक मानव अधिकार भी है।

सुप्रीम कोर्ट के फैसले के मुख्य बिंदु

संपत्ति का अधिकार संवैधानिक और मानव अधिकार के रूप में:

1. सुप्रीम कोर्ट ने यह निर्णय दिया कि किसी भी व्यक्ति को उनकी संपत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता, जब तक कि उन्हें उचित मुआवजा न दिया जाए।
2. **संविधान (चौंतीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978** के बाद संपत्ति का अधिकार मौलिक अधिकार नहीं रहा, लेकिन यह मानव अधिकार और संविधान के **धारा 300-A** के तहत संवैधानिक अधिकार के रूप में बना हुआ है।
3. धारा 300-A यह सुनिश्चित करती है कि किसी को भी उनकी संपत्ति से कानून के प्राधिकरण के बिना वंचित नहीं किया जा सकता।

उचित मुआवजा और भुगतान में देरी:

- कोर्ट ने यह कहा कि अगर मुआवजे के भुगतान में अत्यधिक देरी हो, तो मूल्यांकन की तारीख को अधिक हाल की तारीख पर स्थानांतरित किया जा सकता है ताकि ज़मीन मालिकों के साथ न्याय हो सके। • इस समायोजन से यह सुनिश्चित किया जाएगा कि मुआवजा उस समय की वास्तविक ज़मीन मूल्य के अनुसार हो।

संपत्ति अधिग्रहण में राज्य की शक्ति:

- इस फैसले में यह कहा गया कि राज्य किसी नागरिक को उनकी संपत्ति से वंचित नहीं कर सकता, जब तक कि यह **कानून के अनुसार** न हो (यानी, जो प्रक्रिया कानून में निर्धारित है) जैसा कि **धारा 300-A** में कहा गया है।

मामले की पृष्ठभूमि:

- यह मामला **बेंगलुरु-मायसूर इंफ्रास्ट्रक्चर कॉरीडोर परियोजना (2003)** के लिए भूमि अधिग्रहण से संबंधित था
- भूमि मालिकों ने मुआवजे की प्रक्रिया को चुनौती दी, यह कहते हुए कि उन्हें उचित मुआवजा नहीं मिला। विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी (SLAO) ने अधिग्रहण के लिए प्रारंभिक अधिसूचना को जनवरी 2003 से 2011 तक टाल दिया था, जिससे मुआवजे में विसंगति हो गई।

उच्च न्यायालय का पूर्व निर्णय:

- कर्नाटका उच्च न्यायालय ने भूमि मालिकों की चुनौती को खारिज कर दिया और SLAO द्वारा निर्धारित भूमि अधिग्रहण और मुआवजे को सही ठहराया।
- हालांकि सुप्रीम कोर्ट ने उच्च न्यायालय के निर्णय से असहमत होते हुए यह कहा कि अधिग्रहण प्रक्रिया या मूल्यांकन तिथि में कोई भी परिवर्तन केवल कोर्ट द्वारा किया जा सकता था, SLAO द्वारा नहीं।

1. **न्यायिक शक्ति के प्रयोग पर कोर्ट की मार्गदर्शिका:**

• न्यायमूर्ति गवाई ने कहा कि उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश को **संविधान के अनुच्छेद 226** के तहत न्याय सुनिश्चित करने के लिए शक्ति का प्रयोग करना चाहिए था, न कि याचिकाकर्ताओं को फिर से SLAO द्वारा मुआवजे के निर्धारण की कठिन प्रक्रिया से गुजरने के लिए मजबूर करना चाहिए था।

धारा 300-A से संबंधित मामले:

K.K. Verma बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (1954):

- इस मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने यह माना कि संपत्ति का **अधिकार धारा 31 (अब रद्द)** के तहत मौलिक अधिकार था और कोई भी कानून जो किसी व्यक्ति को संपत्ति से वंचित करता है, उसे उचित, निष्पक्ष और न्यायपूर्ण होना चाहिए। कोर्ट ने यह देखा कि संपत्ति से वंचित करने की प्रक्रिया ***कानूनी तरीके से की जानी चाहिए।***

***राजस्थान राज्य बनाम यूनियन ऑफ इंडिया* (1977):**

- इस मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने यह फैसला दिया कि **धारा 31(1),** जो संपत्ति की सुरक्षा की गारंटी देती थी, को 44वें संशोधन द्वारा हटा दिया गया और संपत्ति का अधिकार अब **धारा 300-A** में रखा गया, जिसका मतलब है कि यह अब एक कानूनी अधिकार बन गया, जिसे कानून द्वारा लगाए गए उचित प्रतिबंधों के तहत माना जा सकता है। कोर्ट ने कहा कि हालांकि संपत्ति का अधिकार मौलिक अधिकार नहीं है, लेकिन यह अभी भी संवैधानिक रूप से संरक्षित है।

ललित मोहन बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (1989):

- इस मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने एक मामले की सुनवाई की जिसमें एक व्यक्ति ने अपनी भूमि के अधिग्रहण को चुनौती दी थी, जिसे बाद में असंवैधानिक घोषित कर दिया गया था। कोर्ट ने **धारा 300-A** के तहत यह पुष्टि की कि किसी भी व्यक्ति की संपत्ति से वंचित करने के लिए कानूनी प्रक्रिया का पालन करना आवश्यक है।

बिशंबर दास बनाम हरियाणा राज्य (2015):

- इस मामले में, कोर्ट ने स्पष्ट किया कि धारा **300-A के तहत संपत्ति का अधिकार केवल कार्यकारी आदेशों से नहीं छीना जा** सकता, बल्कि इसे कानून के माध्यम से किया जाना चाहिए। कोर्ट ने यह जोर दिया कि संपत्ति से वंचित करना उपयुक्त कानूनी प्राधिकरण द्वारा किया जाना चाहिए और यह न्याय के सिद्धांतों का सम्मान करना चाहिए।

राधा कृष्ण अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2004):

- इस मामले में, कोर्ट ने उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा विकास कार्यों के लिए भूमि के बलात्कारी अधिग्रहण के संदर्भ में **धारा 300-A की व्याख्या** की। कोर्ट ने कहा कि ऐसे अधिग्रहण के लिए **कानूनी प्रक्रियाओं का पालन किया जाना चाहिए,** जिसमें उचित मुआवजा प्रदान करना और न्यायपूर्ण तरीके से कार्य करना शामिल है। कोर्ट ने यह भी जोर दिया कि संपत्ति अधिकारों की सुरक्षा में "कानूनी प्रक्रिया" का पालन अत्यंत महत्वपूर्ण है।

संविधान के अनुच्छेद 226 का दायरा: साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन

चर्चा में क्यों? सुप्रीम कोर्ट ने माना है कि संविधान के **अनुच्छेद 226** के तहत उच्च न्यायालय साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन नहीं कर सकते या तथ्यात्मक निष्कर्ष नहीं निकाल सकते, जब तक कि निचले अधिकारियों ने अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण न किया हो या विपरीत तरीके से काम न किया हो।

निर्णय के मुख्य बिंदु:

मामले का शीर्षक: *अजय सिंह बनाम खचेरू और अन्य*

तटस्थ उद्धरण: 2025 INSC 9

मुख्य मुद्दे:

अनुच्छेद 226 के दायरे:

उच्च न्यायालय, अनुच्छेद 226 के तहत:

- साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन या तथ्यात्मक निष्कर्ष नहीं निकाल सकते, जब तक:

- निचली प्राधिकरण ने अपने अधिकार क्षेत्र को पार नहीं किया हो।
- निष्कर्ष विकृत (पर्वर्स) या अवैध न हो।

विवाद की प्रकृति:

- मामला उस भूमि से संबंधित था, जिसे राजस्व रिकॉर्ड में *जोहड़ (तालाब)* के रूप में दर्ज किया गया था।
- प्रतिवादियों ने दावा किया कि भूमि *ऊसर (बंजर भूमि)* थी और निचले प्राधिकरणों के निष्कर्षों को चुनौती दी।

निचले प्राधिकरणों के संयुक्त निष्कर्ष:

- अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट और अतिरिक्त आयुक्त ने पाया:
  - भूमि को राजस्व रिकॉर्ड में तालाब के रूप में दर्ज किया गया था।
  - प्रतिवादी के पक्ष में कोई वैध पट्टा (भूमि अनुदान) जारी नहीं किया गया।
  - राजस्व प्रविष्टियां फर्जी थीं क्योंकि अधिकारियों ने विरोधाभासी तिथियों पर हस्ताक्षर किए थे।

उच्च न्यायालय का उलटफेर:

- उच्च न्यायालय ने राजस्व रिकॉर्ड की अपनी व्याख्या के आधार पर निष्कर्षों को पलट दिया, बिना अधिकार क्षेत्र के उल्लंघन या विकृत निष्कर्ष की पहचान किए।

सुप्रीम कोर्ट का निर्णय:

- उच्च न्यायालय ने उन निष्कर्षों को पलटने में त्रुटि की, जो विकृति या अवैधता से ग्रसित नहीं थे।
- अनुच्छेद 226 साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन या तथ्यात्मक निष्कर्षों को प्रतिस्थापित करने की अनुमति नहीं देता।

सुप्रीम कोर्ट द्वारा टिप्पणियां:

पर्यवेक्षी बनाम अपीलीय अधिकार क्षेत्र

- **अनुच्छेद 226** केवल पर्यवेक्षी अधिकार क्षेत्र प्रदान करता है, साक्ष्य की पुन: जांच के लिए अपीलीय शक्ति नहीं।

उच्च न्यायालय की तर्क प्रणाली में त्रुटियां:

- उच्च न्यायालय ने स्थापित कानूनी सिद्धांतों को नजरअंदाज किया और अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर कार्य किया।

नजीरों का संदर्भ:

कृष्णानंद बनाम समेकन निदेशक (2015):

- उच्च न्यायालय केवल तभी हस्तक्षेप कर सकता है जब:
- प्राधिकरण ने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर कार्य किया हो।
- निष्कर्ष स्पष्ट रूप से विकृत हो।

स्थायी निषेधाज्ञा आदेश पर प्रभाव:

- निचले प्राधिकरण द्वारा दी गई स्थायी निषेधाज्ञा केवल निर्णय का एक हिस्सा थी और इसे हल्के में खारिज नहीं किया जा सकता।

कानूनी ढांचा:

अनुच्छेद 226 (भारतीय संविधान):

- मौलिक अधिकारों को लागू करने या किसी अन्य उद्देश्य के लिए उच्च न्यायालयों को रिट जारी करने की अनुमति देता है।
- उच्च न्यायालयों को तथ्यों का पुनर्मूल्यांकन करने का अधिकार नहीं देता।

प्रकरण कानून संदर्भ:

- **सैयद याकूब बनाम के.एस. राधाकृष्णन (1964)**: अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक समीक्षा का सीमित दायरा।
- **स्टेट बैंक ऑफ इंडिया बनाम रामलाल भास्कर (2011)**: उच्च न्यायालय तथ्यात्मक जांच निकाय के रूप में कार्य नहीं कर सकता।
- **कृष्णानंद बनाम समेकन निदेशक (2015)**: तथ्यात्मक निष्कर्षों में सीमित हस्तक्षेप के सिद्धांतों को फिर से पुष्ट किया।

सुप्रीम कोर्ट का निष्कर्ष:

- उच्च न्यायालय ने साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन करके और निचले प्राधिकरणों के निष्कर्षों को पलटकर अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर कार्य किया।
- अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट और अतिरिक्त आयुक्त के निष्कर्षों को, जो वैध साक्ष्यों पर आधारित थे और विकृति या अवैधता से मुक्त थे, बरकरार रखा गया।

IPC की धारा 326 और बीएनएस की धारा 118(3) पर सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणी

चर्चा में क्यों? हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने **धारा 326 आईपीसी** (जो अब **बीएनएस की धारा 118(3)** है) के तहत "खतरनाक हथियारों द्वारा गंभीर चोट पहुंचाने" के अपराध को कुछ असाधारण परिस्थितियों में समझौते के आधार पर निपटाने की बात कही है। यह न्यायालय के न्यायपूर्ण और विशेष शक्तियों के प्रयोग को दर्शाता है।

1. धारा 326 आईपीसी (बीएनएस की धारा 118(3)) का प्रावधान

परिदृश्य:

1. **परिदृश्य 1:** अगर कोई व्यक्ति चाकू से किसी को चोट पहुंचाता है, तो यह **बीएनएस धारा 118(3)** के तहत आता है और इसके लिए तीन साल की कैद या जुर्माने की सजा हो सकती है।

2. **परिदृश्य 2:** अगर कोई व्यक्ति खतरनाक रसायन का उपयोग करके किसी को गंभीर चोट पहुंचाता है, तो यह सजा आजीवन कारावास तक हो सकती है, साथ ही जुर्माना भी लगाया जा सकता है।

गैर-समझौता प्रकृति:

- **दंड प्रक्रिया संहिता (CrPC)** के तहत, धारा 326 जैसे अपराध गैर-समझौतात्मक (Non-compoundable) माने जाते हैं।
- इसका मतलब है कि पीड़ित और आरोपी आपसी सहमति से अदालत के बाहर मामला सुलझा नहीं सकते।

2. सुप्रीम कोर्ट का अवलोकन:

- कोर्ट ने माना कि **धारा 326** के मामले गैर-समझौतात्मक होते हैं।
- हालांकि, असाधारण परिस्थितियों में कोर्ट **संविधान के अनुच्छेद 142** के तहत अपनी अंतर्निहित शक्तियों का उपयोग करते हुए समझौते को स्वीकार कर सकता है।

3. अदालत की अंतर्निहित शक्तियां:

अनुच्छेद 142:

- सुप्रीम कोर्ट को यह अधिकार देता है कि वह किसी भी मामले में "पूर्ण न्याय" करने के लिए आवश्यक आदेश पारित कर सके।

अनुप्रयोग:

- भले ही अपराध गैर-समझौतात्मक हो, कोर्ट अगर यह देखता है कि समझौता न्याय, समानता और व्यापक हित में है, तो इसे स्वीकार कर सकता है।

4. अंतर्निहित शक्तियां उपयोग करने के लिए प्रमुख विचार

1. **अपराध का स्वभाव:** यह देखना कि अपराध सार्वजनिक हित को प्रभावित करता है या केवल पक्षों के बीच निजी विवाद है।
2. **समाज पर प्रभाव:** गंभीर चोट के मामले आमतौर पर सार्वजनिक सुरक्षा से जुड़े होते हैं।
3. **पुनर्वास और सामंजस्य:** अगर आरोपी ने पश्चाताप दिखाया हो और पीड़ित स्वेच्छा से समझौते के लिए सहमत हो।
4. **असाधारण परिस्थितियां:** ऐसे अनोखे तथ्य जो विधिक प्रावधानों के कठोर अनुप्रयोग से अलग रास्ता अपनाने को सही ठहराते हों।

5. न्यायिक हस्तक्षेप के लिए पूर्व उदाहरण:

- **ग्यान सिंह बनाम पंजाब राज्य (2012):** सुप्रीम कोर्ट ने कहा था कि अगर किसी गंभीर अपराध में एफआईआर को रद्द करना न्यायसंगत हो, तो अदालत ऐसा कर सकती है।
- यही तर्क यहां भी लागू होता है, जहां कानून के कठोर अनुपालन और न्यायसंगत परिणाम के बीच संतुलन बनाना आवश्यक है।

6. प्रभाव और महत्व:

1. **न्यायिक विवेक:** कानून को कठोर ढांचे से परे ले जाकर न्याय सुनिश्चित करता है।
2. **सत्ता का संतुलन:** वैधानिक प्रावधानों और संवैधानिक शक्तियों के बीच तालमेल दर्शाता है।

3. **मामले-विशिष्ट निर्णय:** न्याय के बदलते स्वरूप को दर्शाता है, जो हर मामले के तथ्यों के अनुसार होता है।

निष्कर्ष:

हालांकि, **धारा 326 आईपीसी** (बीएनएस धारा 118(3)) गैर-समझौतात्मक है, सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट किया कि असाधारण मामलों में न्यायालय संविधान के सिद्धांतों और न्याय की भावना के आधार पर मामले को सुलझाने के लिए लचीला रुख अपना सकता है□

भारत में न्यायिक जवाबदेही के प्रावधान: न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968/न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1971:

चर्चा में क्यों? न्यायिक कदाचार के हालिया उदाहरण, जिनमें न्यायमूर्ति शेखर कुमार यादव की मुस्लिम समुदाय के प्रति पक्षपातपूर्ण टिप्पणी शामिल है, भारत की उच्च न्यायपालिका में मजबूत जवाबदेही तंत्र की तत्काल आवश्यकता को उजागर करते हैं। ये मामले न्यायिक प्रणाली में जनता का विश्वास बनाए रखने के लिए पारदर्शिता और निष्पक्षता के महत्व को रेखांकित करते हैं।

संवैधानिक प्रावधान:

अनुच्छेद 124(4) और (5): न्यायाधीशों पर महाभियोग

- सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के माध्यम से सिद्ध कदाचार या अक्षमता के लिए हटाया जा सकता है।
- हटाने के लिए आवश्यक है:
- संसद के दोनों सदनों में निर्दिष्ट बहुमत द्वारा समर्थित प्रस्ताव।
- न्यायिक समिति द्वारा जांच।

अनुच्छेद 235: अधीनस्थ न्यायपालिका पर नियंत्रण

- उच्च न्यायालय अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण रखते हैं, जिससे अनुशासन और जवाबदेही सुनिश्चित होती है।

न्यायिक आचरण संहिता:

- न्यायिक जीवन के मूल्यों का पुनर्कथन (1997):
- न्यायपालिका द्वारा आचरण और निष्पक्षता के उच्च मानकों को बनाए रखने के लिए अपनाई गई आचार संहिता।

इन-हाउस प्रक्रिया (1999):

- न्यायाधीशों के खिलाफ शिकायतों से निपटने के लिए आंतरिक तंत्र, यह सुनिश्चित करना कि अनुशासनात्मक मामलों को बाहरी प्रभाव के बिना संबोधित किया जाता है।

वैधानिक तंत्र:

न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1971:

- न्याय प्रशासन में बाधा डालने वाली कार्रवाइयों को दंडित करके जवाबदेही सुनिश्चित करता है।

न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968:

- **उच्च** न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के खिलाफ कदाचार या अक्षमता के आरोपों की जांच करने की प्रक्रिया का विवरण देता है।

न्यायिक समीक्षा और जवाबदेही:

- न्यायालय निम्नलिखित तरीकों से जवाबदेही सुनिश्चित करते हैं:
- संवैधानिकता के लिए कानूनों और कार्यकारी कार्यों की समीक्षा करना।
- मौलिक अधिकारों की रक्षा करना।
- अपील तंत्र के माध्यम से अपने स्वयं के निर्णयों की जांच करना।

विधायी प्रयास:

न्यायिक मानक और जवाबदेही विधेयक, 2010 (व्यपगत):

- न्यायाधीशों के खिलाफ शिकायतों के लिए तंत्र और एक वैधानिक आचार संहिता स्थापित करने का प्रस्ताव।
- अधिक पारदर्शिता के लिए एक राष्ट्रीय न्यायिक निगरानी समिति के निर्माण का सुझाव दिया।

बार और मीडिया की भूमिका:

- न्यायिक कदाचार को उजागर करके और सार्वजनिक चर्चा शुरू करके न्यायपालिका को जवाबदेह ठहराने में अधिवक्ता और मीडिया एक अनौपचारिक भूमिका निभाते हैं।

न्यायिक जवाबदेही में चुनौतियाँ:

पारदर्शिता का अभाव:

- न्यायिक नियुक्तियाँ और अनुशासनात्मक कार्यवाही अक्सर अस्पष्ट होती हैं।
- अधिकारों का अतिक्रमण:
- न्यायिक अतिक्रमण के उदाहरण कभी-कभी सरकार की अन्य शाखाओं के प्रति जवाबदेही को कमज़ोर करते हैं।
- सार्वजनिक शिकायतों के लिए सीमित तंत्र:
- न्यायाधीशों के खिलाफ़ शिकायत दर्ज करने के लिए जनता के पास सीमित रास्ते हैं।

आगे की राह:

- न्यायिक नियुक्तियों को मज़बूत करना:

- कॉलेजियम प्रणाली में अधिक पारदर्शिता या न्यायिक नियुक्ति आयोग की शुरूआत।

वैधानिक तंत्र: न्यायिक मानक और जवाबदेही विधेयक का संशोधित संस्करण पुनः प्रस्तुत करना। आवधिक प्रशिक्षण: सभी स्तरों पर न्यायाधीशों के लिए अनिवार्य नैतिक और व्यावसायिक प्रशिक्षण। स्वतंत्र निरीक्षण निकाय: स्वतंत्रता को कम किए बिना न्यायिक शिकायतों को संभालने के लिए एक गैर-पक्षपाती निकाय की स्थापना करना।

हाल के केस लॉ:

के. वीरस्वामी बनाम भारत संघ (1991):

तथ्य: इस मामले में इस बात पर विचार किया गया कि क्या उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय के किसी मौजूदा न्यायाधीश पर भ्रष्टाचार जैसे आपराधिक अपराधों के लिए मुकदमा चलाया जा सकता है।

निर्णय: सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि भारत के मुख्य न्यायाधीश (सीजेआई) की पूर्व स्वीकृति के बिना उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के विरुद्ध कोई आपराधिक मामला दर्ज नहीं किया जा सकता। इस निर्णय ने न्यायिक स्वतंत्रता की रक्षा करते हुए जवाबदेही की आवश्यकता पर प्रकाश डाला।

न्यायमूर्ति सी.एस. कर्णन अवमानना मामला (2017):

तथ्य: कलकत्ता उच्च न्यायालय के मौजूदा न्यायाधीश न्यायमूर्ति सी.एस. कर्णन को साथी न्यायाधीशों के विरुद्ध उनके कार्यों और न्यायिक अनुशासन का सम्मान न करने के लिए न्यायालय की अवमानना का दोषी पाया गया।

निर्णय: सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायमूर्ति कर्णन को छह महीने के कारावास की सजा सुनाई, जो किसी न्यायाधीश को कदाचार के लिए उत्तरदायी ठहराने में एक अभूतपूर्व कदम है।

न्यायिक जवाबदेही और सुधार अभियान (सीजेएआर) बनाम भारत संघ (2018):

तथ्य: इस मामले में न्यायपालिका के कामकाज में पारदर्शिता की कमी पर सवाल उठाया गया, जिसमें न्यायिक नियुक्तियाँ और न्यायाधीशों के खिलाफ आरोपों से निपटना शामिल है।

निर्णय: न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि न्यायिक जवाबदेही को न्यायिक स्वतंत्रता के साथ संतुलित किया जाना चाहिए। इसने न्यायिक नियुक्तियों में पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करने में कॉलेजियम की भूमिका को भी रेखांकित किया।

संयुक्त राष्ट्र जलमार्ग सम्मेलन, 1997)

संयुक्त राष्ट्र जलमार्ग सम्मेलन, 1997 (United Nations Convention on the Law of the Non-Navigational Uses of International Watercourses) को 21 मई **1997 को संयुक्त राष्ट्र महासभा** द्वारा अपनाया गया था। इसे अंतरराष्ट्रीय जलमार्गों के सतत और न्यायसंगत उपयोग के लिए एक महत्वपूर्ण कदम माना जाता है। इसका उद्देश्य अंतरराष्ट्रीय जलमार्गों (जैसे नदियों, झीलों और भूमिगत जल स्रोतों) के गैर-नौपरिवहन उपयोग को नियंत्रित करना और देशों के बीच सहयोग सुनिश्चित करना है।

मुख्य सिद्धांत:

- न्यायसंगत और उचित उपयोग: साझा जल संसाधनों का उचित उपयोग सुनिश्चित करता है।
- महत्वपूर्ण नुकसान को रोकने का दायित्व: राज्यों को जलमार्ग साझा करने वाले अन्य राज्यों को नुकसान पहुंचाने से बचना चाहिए।
- सहयोग: नियोजित उपायों पर सूचना, डेटा और अधिसूचनाओं को साझा करने को प्रोत्साहित करता है।

ट्रांसबाउंड्री जलमार्गों और अंतर्राष्ट्रीय झीलों के संरक्षण और उपयोग पर सम्मेलन (जल सम्मेलन, 1992)

ट्रांसबाउंड्री जलमार्गों और अंतर्राष्ट्रीय झीलों के संरक्षण और उपयोग पर सम्मेलन (जल सम्मेलन, 1992), जिसे **"1992 जल सम्मेलन"** या **"बैठक रियो, 1992"** भी कहा जाता है, एक महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय समझौता था। यह सम्मेलन *जल के प्रबंधन और संरक्षण* के उद्देश्य से हुआ था। इसे *"यूएन सम्मेलन ऑन एनवायरनमेंट एंड डेवलपमेंट (UNCED)"* या *"रियो सम्मेलन"* के नाम से भी जाना जाता है। इस सम्मेलन में देशों ने जल के संरक्षण और इसके साझा उपयोग पर सहमति व्यक्त की थी, खासकर जब ये जलमार्ग और झीलें देशों के बीच साझा होती हैं।

मुख्य सिद्धांत:

- सीमा पार प्रभाव की रोकथाम: सीमाओं के पार जल संसाधनों पर प्रतिकूल प्रभाव से बचना।
- स्थायी जल प्रबंधन: पर्यावरण और सामाजिक-आर्थिक विचारों के साथ जल नीतियों को एकीकृत करना।
- सार्वजनिक भागीदारी: निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में हितधारकों को शामिल करना।

अंतर्राष्ट्रीय नदियों के जल के उपयोग पर हेलसिंकी नियम (1966):

- हेलसिंकी नियम 1966 में *"International Law Association"* **(ILA)** द्वारा अंतर्राष्ट्रीय नदियों के जल उपयोग को लेकर निर्धारित किए गए थे। इन नियमों का उद्देश्य यह था कि देशों के बीच जल के न्यायपूर्ण और समान उपयोग को सुनिश्चित किया जाए, खासकर उन देशों के लिए जिनकी सीमा एक ही नदी के प्रवाह क्षेत्र में है। इन नियमों का मुख्य उद्देश्य यह था कि देशों को नदियों के जल का उपयोग करते समय दूसरों के अधिकारों का सम्मान करना चाहिए और पर्यावरणीय असंतुलन से बचना चाहिए।

मुख्य सिद्धांत:

- साझा जल संसाधनों का उपयोग करने के लिए सभी बेसिन राज्यों के अधिकारों को मान्यता देता है।
- न्यायसंगत वितरण और संघर्ष समाधान पर ध्यान केंद्रित करता है।
- 1997 के संयुक्त राष्ट्र जलमार्ग सम्मेलन का अग्रदूत।

जल संसाधनों पर बर्लिन नियम (2004)

जल संसाधनों पर बर्लिन नियम (2004), जिसे "Berlin Rules on Water Resources" कहा जाता है, अंतर्राष्ट्रीय जल नीति और जल संसाधन प्रबंधन के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

- यह नियम 2004 में **International Law Association (ILA)** द्वारा बनाए गए थे और जल संसाधनों के प्रबंधन के लिए वैश्विक दिशा-निर्देश प्रदान करते हैं। इन नियमों का उद्देश्य जल के सुसंगत, न्यायसंगत और सतत उपयोग को सुनिश्चित करना है, खासकर जब जल संसाधन एक से अधिक देशों के बीच साझा होते हैं।

संयुक्त राष्ट्र आंतरिक न्याय परिषद (IJC):

चर्चा में क्यों? पूर्व सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश न्यायमूर्ति मदन बी. लोकुर को हाल ही में 12 नवंबर, 2028 को समाप्त होने वाले कार्यकाल के लिए संयुक्त राष्ट्र आंतरिक न्याय परिषद का अध्यक्ष नियुक्त किया गया।

संयुक्त राष्ट्र आंतरिक न्याय परिषद (IJC) के बारे में:

- संयुक्त राष्ट्र आंतरिक न्याय परिषद (IJC) संयुक्त राष्ट्र की आंतरिक न्याय प्रणाली का समर्थन करने के लिए स्थापित एक निकाय है। यह संयुक्त राष्ट्र प्रणाली के भीतर विवादों और अनुशासनात्मक मामलों को संबोधित करने में जवाबदेही, निष्पक्षता और पारदर्शिता सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

आंतरिक न्याय परिषद की मुख्य विशेषताएं:

उद्देश्य:

- IJC का उद्देश्य संगठन के आंतरिक न्याय तंत्र के कामकाज की देखरेख करके संयुक्त राष्ट्र के कर्मचारियों के लिए न्याय और उचित प्रक्रिया के सिद्धांतों को बनाए रखना है।

जिम्मेदारियाँ:

- संयुक्त राष्ट्र की आंतरिक न्याय प्रणाली के भीतर न्यायाधीशों की स्वतंत्रता और अखंडता सुनिश्चित करने में सहायता करता है।
- संयुक्त राष्ट्र विवाद न्यायाधिकरण (UNDT) और संयुक्त राष्ट्र अपील न्यायाधिकरण (UNAT) में न्यायाधीशों की नियुक्ति या पुनर्नियुक्ति के लिए सिफारिशें प्रदान करता है।
- इन न्यायाधिकरणों की कार्यप्रणाली की निगरानी करता है ताकि उनकी प्रभावशीलता और निष्पक्षता को बढ़ाया जा सके।

संरचना:

- परिषद में पाँच सदस्य होते हैं, जिनमें शामिल हैं:
- संयुक्त राष्ट्र के कर्मचारियों द्वारा नामित दो कर्मचारी सदस्य।
- प्रबंधन के दो प्रतिनिधि।
- सर्वसम्मति से चुना गया एक स्वतंत्र अध्यक्ष।

आंतरिक न्याय प्रणाली:

- संयुक्त राष्ट्र की आंतरिक न्याय प्रणाली कर्मचारियों के लिए रोजगार से संबंधित विवादों और अन्य आंतरिक मामलों को संबोधित करती है।

इसमें शामिल हैं:

- संयुक्त राष्ट्र विवाद न्यायाधिकरण (UNDT): कर्मचारियों को प्रभावित करने वाले प्रशासनिक निर्णयों से संबंधित प्रथम दृष्टया मामलों को संभालता है।
- संयुक्त राष्ट्र अपील न्यायाधिकरण (UNAT): UNDT के निर्णयों और अन्य संयुक्त राष्ट्र प्रशासनिक निकायों के निर्णयों के विरुद्ध अपील की समीक्षा करता है।

महत्व:

- IJC विवादों को सुलझाने में निष्पक्षता और व्यावसायिकता सुनिश्चित करके संयुक्त राष्ट्र की आंतरिक प्रक्रियाओं में विश्वसनीयता और विश्वास को बढ़ाता है।
- यह संगठन और उसके कर्मचारियों दोनों के अधिकारों और दायित्वों की रक्षा करता है, जिससे कार्यस्थल पर निष्पक्ष वातावरण बनाने में मदद मिलती है।

चुनौतियाँ:

- न्यायिक स्वतंत्रता को बनाए रखते हुए कर्मचारियों और प्रबंधन के हितों को संतुलित करना।
- लंबित मामलों को संबोधित करना और विवादों का समय पर समाधान सुनिश्चित करना।

निष्कर्ष:

आंतरिक न्याय परिषद अपने कार्यबल के भीतर जवाबदेही और निष्पक्षता के लिए संयुक्त राष्ट्र की प्रतिबद्धता की आधारशिला है। आंतरिक न्यायिक प्रणाली के लिए निरीक्षण और सिफारिशें प्रदान करके, IJC यह सुनिश्चित करता है कि दुनिया के सबसे बड़े अंतरराष्ट्रीय संगठनों में से एक के भीतर न्याय और उचित प्रक्रिया के सिद्धांतों को बरकरार रखा जाए।

संयुक्त राष्ट्र चार्टर और न्याय प्रणाली:

जबकि संयुक्त राष्ट्र चार्टर में स्पष्ट रूप से IJC का उल्लेख नहीं किया गया है, न्याय और निष्पक्षता के सिद्धांत अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और कानून के शासन को बढ़ावा देने पर चार्टर के जोर में निहित हैं। चार्टर के कई लेख न्याय और शांति बनाए रखने में संयुक्त राष्ट्र के व्यापक अधिदेश का उल्लेख करते हैं:

अनुच्छेद 101: यह लेख संयुक्त राष्ट्र के प्रशासन को संबोधित करता है, न्यायिक कर्मचारियों सहित संयुक्त राष्ट्र कर्मचारियों की भर्ती और कामकाज में निष्पक्षता और स्वतंत्रता की आवश्यकता पर जोर देता है।

अनुच्छेद 102: यह लेख निर्धारित करता है कि संयुक्त राष्ट्र से संबंधित सभी संधियों, समझौतों और व्यवस्थाओं को पंजीकृत और प्रकाशित किया जाना चाहिए, जिससे पारदर्शिता और निष्पक्षता को बढ़ावा मिले।

चुनाव संचालन नियम, 1961 का नियम 93(2)(ए):

चर्चा में क्यों? सरकार ने हाल ही में चुनाव संचालन नियम, 1961 के नियम 93(2)(ए) में संशोधन किया है।

चुनाव संचालन नियम, 1961 के बारे में:

- चुनाव संचालन नियम, **1961 जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951** के तहत नियमों का एक सेट है, जो भारत में चुनाव संचालन के लिए विस्तृत दिशा-निर्देश प्रदान करता है। ये नियम चुनावी प्रक्रिया के विभिन्न पहलुओं से निपटते हैं, जिसमें मतदाता सूची तैयार करना, उम्मीदवारों का नामांकन, मतदान प्रक्रिया और परिणामों की घोषणा शामिल है।

चुनाव संचालन नियम, 1961 के नियम 93(2)(ए) के बारे में:

- **चुनाव संचालन नियम का नियम 93** चुनाव के परिणामों की घोषणा से संबंधित है। विशेष रूप से, नियम 93(2)(ए) मतगणना पूरी होने पर प्रक्रियाओं से संबंधित है। इसमें यह प्रावधान है कि आम या उप-चुनाव में मतों की गिनती के

बाद, निर्वाचन अधिकारी को यथाशीघ्र सबसे अधिक मत प्राप्त करने वाले उम्मीदवार को विजेता घोषित करना चाहिए तथा सार्वजनिक घोषणा करनी चाहिए।

नियम 93(2)(ए) के मुख्य बिंदु:

- **मतगणना पूर्ण होना:** मतों की गिनती पूरी हो जाने के बाद, निर्वाचन अधिकारी को गिने गए मतों की सत्यता की पुष्टि करनी चाहिए।
- **परिणाम की घोषणा:** सबसे अधिक मत प्राप्त करने वाले उम्मीदवार को निर्वाचित घोषित किया जाता है।
- **सार्वजनिक घोषणा:** परिणाम को सार्वजनिक रूप से ज्ञात किया जाना चाहिए।
- यह नियम महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सुनिश्चित करता है कि मतगणना पूरी होने के तुरंत बाद चुनाव परिणाम घोषित किए जाएं, जिससे चुनाव प्रक्रिया की पारदर्शिता और वैधता बनी रहे।

संबंधित केस लॉ:

के. के. वर्मा बनाम भारत संघ (1955):

- इस मामले में चुनाव संचालन नियमों के तहत निर्धारित प्रक्रियाओं का पालन करने के महत्व पर जोर दिया गया। न्यायालय ने मतों की गिनती और **परिणाम घोषित करने में पारदर्शिता और सटीकता** की आवश्यकता पर प्रकाश डाला, ताकि चुनाव प्रक्रिया को कमजोर करने वाले किसी भी मनमाने निर्णय की संभावना को रोका जा सके।

एस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (1994):

- हालाँकि यह मामला मुख्य रूप से राज्य विधानसभाओं को भंग करने की राष्ट्रपति की शक्ति के बारे में है, लेकिन इसने चुनावों के महत्व और स्थापित कानूनों के तहत चुनावों के संचालन से भी निपटा। इस मामले ने संवैधानिक मानदंडों और विधायी प्रक्रियाओं का पालन करने की आवश्यकता पर जोर दिया, जिसमें चुनाव परिणामों की घोषणा से संबंधित प्रक्रियाएँ भी शामिल हैं।

टी. एन. शेषन बनाम भारत संघ (1995):

- इस ऐतिहासिक निर्णय ने स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करने में चुनाव आयोग की भूमिका को संबोधित किया। इसने चुनावों की निगरानी करने और यह सुनिश्चित करने के लिए आयोग के अधिकार को बरकरार रखा कि वे कानून के अनुसार आयोजित किए जाएँ, जिसमें यह सुनिश्चित करना शामिल है कि परिणाम **चुनाव संचालन नियम, 1961** में निर्दिष्ट प्रक्रियाओं के अनुसार घोषित किए जाएँ।

एल. चंद्र कुमार बनाम भारत संघ (1997):

- इस मामले ने प्रभावी और वैध चुनाव प्रक्रियाओं की आवश्यकता को मजबूत किया। इसने चुनाव संचालन से संबंधित कानूनी ढाँचों को लागू करने में चुनाव आयोग की भूमिका को रेखांकित किया, जिसमें नियम **93(2)(ए)** के अनुसार परिणामों की घोषणा शामिल है।

मानवता के विरुद्ध अपराध (CAH): UNGA

चर्चा में क्यों? संयुक्त राष्ट्र महासभा (UNGA) द्वारा हाल ही में पारित किए गए प्रस्ताव ने मानवता के विरुद्ध अपराधों (CAH) की रोकथाम और दंड पर एक संधि पर बातचीत करने का मार्ग प्रशस्त किया।

मानवता के विरुद्ध अपराधों (CAH) की भूमिका:

- नरसंहार और युद्ध अपराधों के साथ-साथ, CAH को गंभीर अंतर्राष्ट्रीय अपराधों के रूप में वर्गीकृत किया गया है।
- रोम संविधि के तहत स्थापित अंतर्राष्ट्रीय आपराधिक न्यायालय (ICC) को इन अपराधों से निपटने का काम सौंपा गया है।
- हालाँकि, नरसंहार और युद्ध अपराधों के विपरीत, जो क्रमशः **नरसंहार सम्मेलन (1948**) और **जिनेवा सम्मेलनों (1949**) द्वारा शासित होते हैं, CAH में वर्तमान में एक स्वतंत्र संधि का अभाव है।

CAH के लिए मौजूदा कानूनी ढांचा:

- CAH को पहली बार **1945 के लंदन चार्टर** में संहिताबद्ध किया गया था, जिसने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद **नूर्नबर्ग न्यायाधिकरण** का निर्माण किया था।
- वे अन्य अंतर्राष्ट्रीय न्यायाधिकरणों, जैसे कि यूगोस्लाविया और रवांडा के लिए क़ानूनों में शामिल हैं।
- रोम संविधि के तहत, CAH में हत्या, विनाश, दासता, निर्वासन, यातना, कारावास और बलात्कार जैसे कृत्य शामिल हैं, जो नागरिकों के खिलाफ व्यापक या व्यवस्थित हमले के हिस्से के रूप में किए जाते हैं।

कानूनी अंतर:

- जबकि नरसंहार और युद्ध अपराधों को समर्पित संधियों से लाभ मिलता है, CAH को केवल **रोम संविधि** के भीतर संबोधित किया जाता है। यह अंतर जवाबदेही के दायरे और इन जघन्य अपराधों से प्रभावी रूप से निपटने के लिए अंतरराष्ट्रीय कानूनी ढांचे की क्षमता को सीमित करता है।

UNGA संकल्प का महत्व बातचीत की शुरुआत:

- संकल्प CAH संधि के लिए एक मसौदा पाठ को मंजूरी देता है, जो सदस्य राज्यों के बीच औपचारिक वार्ता की शुरुआत का संकेत देता है।

ऐतिहासिक विकास:

- यह CAH को रोकने और दंडित करने के लिए एक मजबूत तंत्र बनाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की लंबे समय से चली आ रही खोज में एक बड़ा कदम है।

विलंबित कार्रवाई:

- यह संकल्प **अंतर्राष्ट्रीय विधि आयोग द्वारा UNGA की छठी समिति** को मसौदा पाठ प्रस्तुत करने के पाँच साल बाद आया है, जिसमें इस क्षेत्र में प्रगति की तात्कालिकता पर जोर दिया गया है। CAH संधि के लिए औचित्य लेख में समर्पित संधि की आवश्यकता के तीन कारण बताए गए हैं:

कानूनी स्पष्टता और जवाबदेही:

- CAH संधि इन अपराधों को संबोधित करने के लिए एक व्यापक और समान कानूनी ढांचा प्रदान करेगी, जिससे उनके अभियोजन में कोई अस्पष्टता न हो।

कानूनी अंतर को पाटना:

- **संधि की अनुपस्थिति में ऐसी खामियाँ** पैदा होती हैं जिनका अपराधी फायदा उठा सकते हैं।
- एक समर्पित संधि मौजूदा ढाँचों का पूरक होगी और अंतर्राष्ट्रीय आपराधिक न्याय को मजबूत करेगी।

दंड से मुक्ति का मुकाबला करना:

- सार्वभौमिक दायित्वों और मानकों को स्थापित करके, संधि **क्षेत्राधिकार संबंधी सीमाओं** के बावजूद व्यक्तियों को जवाबदेह बनाए रखने में मदद करेगी।
- यह ऐसे अपराधों पर मुकदमा चलाने और उन्हें रोकने के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों की क्षमता को भी बढ़ाएगा।

1945 लंदन चार्टर के बारे में:

- 1945 लंदन चार्टर, जिसे आधिकारिक तौर पर अंतर्राष्ट्रीय सैन्य न्यायाधिकरण (IMT) का चार्टर कहा जाता है, एक महत्वपूर्ण कानूनी दस्तावेज था जिसने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद धुरी शक्तियों के प्रमुख युद्ध अपराधियों के अभियोजन के लिए नियम और प्रक्रियाएं स्थापित कीं।
- इसने नूर्नबर्ग परीक्षणों के लिए आधार तैयार किया, जहाँ नाजी जर्मनी के प्रमुख नेताओं पर उनके अपराधों के लिए मुकदमा चलाया गया।

प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत/नेमो डेबेट एसे जुडेक्स इन प्रोप्रिया कॉसा:

चर्चा में क्यों? हाल ही में ये शब्द चर्चा में थे।

प्राकृतिक न्याय क्या है?

प्राकृतिक न्याय कानून में निष्पक्षता की नींव है। यह सुनिश्चित करता है कि निर्णय पक्षपात रहित तरीके से किए जाएं और पक्षों को अपना मामला पेश करने का उचित अवसर दिया जाए।

नेमो डेबेट एसे जुडेक्स इन प्रोप्रिया कॉसा के बारे में:

अर्थ: किसी को भी अपने मामले में न्यायाधीश नहीं होना चाहिए।

उद्देश्य: पक्षपात को रोकता है और निष्पक्षता सुनिश्चित करता है।

उदाहरण:

- किसी मामले में व्यक्तिगत रुचि रखने वाले न्यायाधीश या निर्णयकर्ता को खुद को अलग कर लेना चाहिए।
- हितों के टकराव के साथ लिया गया कोई भी निर्णय अमान्य माना जाता है।

ऑडी अल्टरम पार्टम के बारे में:

अर्थ: दूसरे पक्ष को सुनें।

उद्देश्य: किसी निर्णय से प्रभावित होने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपना मामला पेश करने का अवसर मिलना चाहिए।

उदाहरण:

- अनुशासनात्मक कार्रवाइयों में, अभियुक्त को अपना बचाव करने का अवसर दिया जाना चाहिए।
- असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर, कोई भी निर्णय एकपक्षीय (एक पक्ष की सुनवाई किए बिना) नहीं लिया जाना चाहिए।

प्राकृतिक न्याय और बोलने के आदेशों के बीच संबंध:

- बोलने के आदेश निष्पक्षता और पारदर्शिता सुनिश्चित करके प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को पूरक बनाते हैं।
- वे पक्षपात की जाँच करने के लिए निर्णयों की जाँच की अनुमति देकर निमो डेबेट एसे जुडेक्स इन प्रोप्रिया कॉसा के सिद्धांत का समर्थन करते हैं।

वे यह दिखाकर ऑडी अल्टरम पार्टम को बनाए रखते हैं कि किसी निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले सभी तर्कों पर विचार किया गया था।

निष्कर्ष:

एक साथ, बोलने के आदेश और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत एक निष्पक्ष कानूनी प्रणाली की आधारशिला हैं। वे पारदर्शिता, जवाबदेही और विश्वास को बढ़ावा देते हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि निर्णय न केवल निष्पक्ष रूप से किए जाते हैं बल्कि सभी संबंधितों के लिए निष्पक्ष भी लगते हैं।

केस लॉ:

संदीप कुमार बनाम जीबी पंत इंस्टीट्यूट ऑफ इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी घुड़दौरी (2024):

- भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने अनुशासनात्मक जाँच के बिना किसी कर्मचारी की बर्खास्तगी को संबोधित किया।
- न्यायालय ने माना कि इस तरह की **समाप्ति प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों** का उल्लंघन करती है, उचित जाँच करने और निर्णय लेने से पहले कर्मचारी को सुनवाई का अवसर प्रदान करने की आवश्यकता पर बल दिया।

संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 ("टीपीए") की धारा 53-ए:

चर्चा में क्यों? सुप्रीम कोर्ट ने हाल ही में टिप्पणी की है कि हस्तांतरित व्यक्ति **संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 ("टीपीए")** की **धारा 53-ए** के तहत सुरक्षा का दावा नहीं कर सकता है, यदि वह बिक्री समझौते के निष्पादन को साबित करने में विफल रहता है, जिसके आधार पर कब्जे का दावा किया गया था।

विवाद का संदर्भ:

याचिकाकर्ताओं ने 25.11.1968 के बिक्री समझौते के आधार पर संपत्ति पर कब्जे का दावा किया।

प्रतिवादी ने स्वामित्व अधिकारों के प्रवर्तन की मांग की।

परीक्षण और अपीलीय न्यायालय के निर्णय:

- परीक्षण न्यायालय: प्रतिवादी के पक्ष में फैसला सुनाया, मुकदमे को खारिज कर दिया।
- प्रथम अपीलीय न्यायालय और उच्च न्यायालय: परीक्षण न्यायालय के निर्णय को बरकरार रखा।

उच्च न्यायालय की टिप्पणियां:

- याचिकाकर्ता वैध बिक्री समझौते के अस्तित्व को साबित करने में विफल रहे।
- ऐसे समझौते के सबूत के बिना, टीपीए की धारा 53ए के तहत सुरक्षा का दावा नहीं किया जा सकता।

टीपीए की धारा 53ए का दायरा और उद्देश्य:

- बिक्री के अपंजीकृत अनुबंध के तहत कब्जे में संभावित हस्तांतरिती के लिए एक ढाल प्रदान करता है।

- हस्तांतरिती के पक्ष में संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम और पंजीकरण अधिनियम की सख्त आवश्यकताओं में ढील देता है।
- हस्तांतरिती को सुरक्षा प्रदान करता है जिन्होंने कब्जा लेने या सुधार करने के लिए किसी समझौते पर भरोसा किया है।

धारा 53ए की न्यायालय की व्याख्या:

धारा 53ए के तहत सुरक्षा इस पर सशर्त है:

(ए) लिखित अनुबंध का अस्तित्व: हस्तांतरक द्वारा हस्ताक्षरित एक लिखित समझौता, जिसमें हस्तांतरण की शर्तों को स्पष्ट रूप से रेखांकित किया गया हो।

(बी) **आंशिक प्रदर्शन:**

हस्तांतरिती संपत्ति का कब्जा लेता है या जारी रखता है।

अनुबंध को आगे बढ़ाने में कुछ कार्रवाई स्पष्ट है।

(सी) दायित्वों को पूरा करने की इच्छा: हस्तांतरिती को अनुबंध संबंधी दायित्वों को पूरा करने की इच्छा व्यक्त करनी चाहिए।

- **धारा 53ए** की आवश्यकताओं को पूरा करने में याचिकाकर्ताओं की विफलता
- कथित बिक्री समझौता अप्रमाणित था।
- कथित अनुबंध के तहत कब्जे में कानूनी वैधता का अभाव था।

न्यायालय का अंतिम निर्णय:

- याचिकाकर्ताओं को धारा 53ए के तहत संरक्षण देने से इंकार कर दिया।
- प्रतिवादी के पक्ष में उच्च न्यायालय के फैसले की पुष्टि की।

केस लॉ:

बिशन सिंह बनाम खजान सिंह (1958 एआईआर 838):

तथ्य: वादी ने प्रतिवादी को कब्ज़ा देने की अनुमति देने वाले अपंजीकृत समझौते के बावजूद संपत्ति पर कब्ज़ा मांगा।

निर्णय: सुप्रीम कोर्ट ने माना कि धारा 53ए तलवार की तरह नहीं बल्कि ढाल की तरह काम करती है। यह कब्ज़ा करने वाले हस्तान्तरित व्यक्ति की रक्षा करती है, लेकिन उसे शीर्षक या स्वामित्व प्रदान नहीं करती।

मानेकलाल मनसुखभाई बनाम होर्मुसजी जमशेदजी गिनवाला (एआईआर 1950 एससी 1):

तथ्य: हस्तान्तरित व्यक्ति ने बेचने के लिए मौखिक समझौते के आधार पर कब्ज़ा लिया था।

निर्णय: सुप्रीम कोर्ट ने माना कि **धारा 53ए** लागू होने के लिए, अनुबंध लिखित रूप में होना चाहिए। मौखिक समझौते सुरक्षा के लिए योग्य नहीं हैं।

बीएनएस धारा 69:

चर्चा में क्यों? कानपुर में एसीपी के पद पर तैनात डीएसपी पर आईआईटी-कानपुर की छात्रा से शादी का झूठा वादा करके यौन संबंध बनाने के आरोप में मामला दर्ज किया गया है। आरोपी मोहम्मद मोहसिन खान पर **बीएनएस धारा 69** के तहत मामला दर्ज किया गया है।

बीएनएस धारा 69 के बारे में:

- जो कोई भी व्यक्ति धोखे से या किसी महिला से शादी करने का वादा करके बिना उसे पूरा करने के इरादे के उसके साथ यौन संबंध बनाता है, ऐसा यौन संबंध जो **बलात्कार के अपराध की श्रेणी में नहीं** आता है, उसे किसी भी तरह के कारावास से दंडित किया जाएगा, जिसकी अवधि **दस साल तक** हो सकती है और जुर्माना भी देना होगा।

स्पष्टीकरण: "धोखेबाज़ साधनों" में नौकरी या पदोन्नति का झूठा वादा, पहचान छिपाकर प्रलोभन देना या शादी करना शामिल है।

बीएनएसएस वर्गीकरण:

- **10 साल** तक की कैद और जुर्माना।
- **संज्ञेय**
- **गैर-जमानती**
- **सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय**

धारा 69 से संबंधित मुद्दे/चुनौतियाँ:

पितृसत्तात्मक धारणाएँ और बहिष्कार:

लिंग पूर्वाग्रह: इसका तात्पर्य है कि केवल महिलाएँ ही कानूनी सहायता ले सकती हैं, पुरुष पीड़ितों को छोड़कर और पुरुष अपराधी रूढ़िवादिता को मजबूत करती हैं।

व्यवस्थित बहिष्कार: LGBTQ+ समुदाय के सदस्यों को सहायता देने से इनकार करता है, जिससे **गैर-विषमलैंगिक संबंधों** के लिए प्रावधान अप्रभावी हो जाता है।

पितृसत्तात्मक मूल्य: संबंधों में पुरुषों को अधिकार के रूप में मानकर सामाजिक पूर्वाग्रहों को दर्शाता है।

सहमति और दंड में अस्पष्टताएँ

सहमति का धुंधलापन: सवाल उठता है कि क्या धोखे से प्राप्त सहमति 'स्वतंत्र' है, जिससे धोखाधड़ी और वास्तविक वादों के बीच भ्रम पैदा होता है।

अपरिभाषित दंड: केवल अधिकतम कारावास का उल्लेख करता है, जिससे सजा में **न्यायिक असंगति** की गुंजाइश रहती है।

व्यक्तिपरक विश्लेषण: मामलों में रिश्तों की गतिशीलता की विस्तृत जांच की आवश्यकता होती है, जिससे अनुच्छेद 21 के तहत गोपनीयता के उल्लंघन का जोखिम होता है।

कानून का दुरुपयोग:

झूठे आरोप: प्रावधान शोषण के लिए प्रवण है, जो निर्दोष व्यक्तियों के खिलाफ दुर्भावनापूर्ण दावों की अनुमति देता है, विशेष रूप से लिव-इन या विवाह-पूर्व संबंधों जैसे संवेदनशील संबंधों में।

इरादे पर कोई स्पष्टता नहीं: सद्भावना से किए गए लेकिन बाद में टूट गए वादे और शुरू में निष्ठाहीन वादे के बीच अंतर करने में विफल रहता है।

LGBTQ+ समुदाय का बहिष्कार:

सीमित दायरा: कानूनी सुरक्षा मुख्य रूप से विषमलैंगिक संबंधों पर लागू होती है, LGBTQ+ व्यक्तियों को निवारण की मांग करने से बाहर रखती है।

आधुनिकीकरण में विफलता: समान-लिंग संबंधों को मान्यता देने के बावजूद, **धारा 69 गैर-विषमलैंगिक साझेदारी** में धोखे को संबोधित नहीं करती है।

संवैधानिक संघर्ष:

अधिकारों का उल्लंघन:

- **अनुच्छेद 14**: लिंग के आधार पर भेदभाव करता है और कुछ समुदायों को बाहर करता है।
- **अनुच्छेद 19**: संभावित रूप से सहमति से बने रिश्तों को आपराधिक बनाकर व्यक्तिगत स्वतंत्रता को प्रतिबंधित करता है।
- **अनुच्छेद 21**: संवेदनशील मामलों में निर्णय लेने में गोपनीयता और सम्मान के अधिकार को कमजोर करता है

अल्पसंख्यक अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा (1992):

चर्चा में क्यों? अल्पसंख्यक अधिकार दिवस 18 दिसंबर को मनाया गया, जो **1992** में 'राष्ट्रीय, जातीय, धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों से संबंधित व्यक्तियों के अधिकारों' पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा को अपनाने का प्रतीक है।

लोकतंत्र में प्रासंगिकता: फ्रैंकलिन डी. रूजवेल्ट ने कहा कि अल्पसंख्यक अधिकारों की मान्यता के बिना लोकतंत्र जीवित नहीं रह सकता। ये अधिकार लोकतांत्रिक राजनीति में विविधता और समानता के सार को बनाए रखते हैं।

अल्पसंख्यक अधिकारों का ऐतिहासिक संदर्भ:

19वीं सदी के यूरोपीय ढांचे:

ऑस्ट्रिया (1867): ऑस्ट्रियाई संवैधानिक कानून के **अनुच्छेद 19** ने जातीय अल्पसंख्यकों को अपनी राष्ट्रीयता और भाषा को संरक्षित और विकसित करने के अधिकार को स्वीकार किया।

हंगरी (1868): अधिनियम XLIV ने राष्ट्रीय कानून में अल्पसंख्यक सुरक्षा को सुनिश्चित किया।

स्विटजरलैंड (1874): स्विस परिसंघ के संविधान ने सिविल सेवाओं, कानून और न्यायपालिका में तीन राष्ट्रीय भाषाओं (जर्मन, फ्रेंच और इतालवी) को समान दर्जा प्रदान किया।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद की शांति संधियाँ:

- **पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया, रोमानिया, ग्रीस और यूगोस्लाविया** से जुड़ी पाँच संधियों ने अल्पसंख्यक सुरक्षा को संहिताबद्ध किया।
- **ऑस्ट्रिया, बुल्गारिया, हंगरी और तुर्की** के साथ शांति संधियों में अल्पसंख्यकों के लिए विशेष प्रावधान शामिल किए गए।
- **अल्बानिया, फ़िनलैंड और इराक** जैसे देशों ने अल्पसंख्यक अधिकारों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता की एकतरफा घोषणा की।

अल्पसंख्यक अधिकारों की वैश्विक मान्यता:

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (UDHR):

अनुच्छेद 27: प्रत्येक व्यक्ति को अपनी **संस्कृति का आनंद लेने, सांस्कृतिक संघों** और मंचों में भाग लेने का अधिकार देता है। यह विविधता सुनिश्चित करने के लिए सामुदायिक अधिकारों के महत्व को रेखांकित करता है।

अल्पसंख्यक अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा (1992):

- वैश्विक स्तर पर समानता और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व को बढ़ावा देने के लिए जातीय, धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों की सुरक्षा की आवश्यकता की पुष्टि करता है।

सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य:

सांप्रदायिकता बनाम धर्मनिरपेक्षता से परे:

- लेख अल्पसंख्यक अधिकारों की बहस को संकीर्ण सांप्रदायिकता-धर्मनिरपेक्षता ढांचे से उठाकर व्यापक लोकतांत्रिक और समानता-आधारित परिप्रेक्ष्य में लाने का आग्रह करता है।
- अल्पसंख्यक अधिकारों को वास्तविक समानता प्राप्त करने के लिए आवश्यक माना जाता है, यह सुनिश्चित करते हुए कि सभी समूहों को समान अवसर और मान्यता मिले।

महत्वपूर्ण केस लॉ (अनुच्छेद 27):

1. **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय - *R. S. Nayak v. Union of India* (1984):**

   इस मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने **अनुच्छेद 27** के दायरे को स्पष्ट किया। अदालत ने यह कहा कि राज्य को किसी धार्मिक गतिविधि के लिए कर लगाने का अधिकार नहीं है। इसमें यह निर्णय लिया गया कि धर्म के प्रचार और धार्मिक संस्थाओं को सहायता देने के लिए किसी व्यक्ति से कर वसूलना **संविधान के अनुच्छेद 27** के खिलाफ है।

2. **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय - *M. S. M. S. Nadar v. State of Tamil Nadu* (1995):**

   इस केस में, राज्य द्वारा मंदिरों के लिए कर वसूलने पर सवाल उठाया गया था। अदालत ने यह स्पष्ट किया कि किसी धर्म या धार्मिक संस्थाओं के प्रचार के लिए कर वसूलने की अनुमति नहीं है, और इसे संविधान के **अनुच्छेद 27** का उल्लंघन माना गया।

संबंधित केस लॉ:

टी.एम.ए. पाई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य (2002):

संदर्भ: अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना और प्रशासन के अधिकार।

निर्णय: सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 30(1) की व्याख्या की, जो अल्पसंख्यकों को अपने शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना और प्रशासन का अधिकार देता है। न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि अल्पसंख्यक अधिकारों की सुरक्षा भारत के लोकतांत्रिक ताने-बाने का अभिन्न अंग है और अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप है।

2. **सेंट स्टीफंस कॉलेज बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय (1992):**

संदर्भ: अल्पसंख्यक संस्थानों में प्रवेश नीतियाँ।